Sahitya Manthan
A Peer-Reviewed, Open Access e-journal
ISSN: 2582 6867, Website: http://www.sahityamanthan.in
Year-3, Issue-8, Continuous Issue-24, March - April 2024

भारतीय शिक्षा प्रणालि में 'सा विद्या या विमुक्तये" का दार्शनिक विमर्श"

-डॉ. उमा शर्मा

भूमिका

वर्तमान समय में जब राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली (NEP) की सार्वत्रिक चर्चा हो रही है तब हमारे लिए सर्व प्रथम सनातन प्राचीन शिक्षा प्रणालि से अवगत होना अनिवार्य हो जाता है । अपितु यह भी आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में ऐसी कौन सी त्रुटियाँ रही जिस कारण वश हमें पुनः हमारी सनातन शिक्षाप्रणालि की और दृष्टि करनी पडी? दोनों में भेद समझने की एवम् वर्तमान पीढी को समझाने की अनिवार्यता है । शिक्षा के विषय में सभी दार्शनिक एकमत है कि शिक्षा की पूर्णता एवं समजता तभी संभव है जब वह (1) स्वावलंबन (2) व्यक्तित्व निर्माण एवं (3) सामाजिक सद्भावना का विकास के लक्ष्यों को पूरा करने में सामर्थ्यवान हो । शिक्षा का कार्य व्यक्ति को जानकारी प्रदान करना और राष्ट्र का जिम्मेदार नागरिक बनाना है । साक्षरता से आरंभ होनेवाली शिक्षा आगे बढने पर मनुष्य के मस्तिष्क का अमर्यादित विस्तार करती है । जिसके कारण व्यक्ति व्यावहारिक ज्ञान में प्रवीण एवं विद्वत्ता में निपुण माना जाता है ।

किन्तु इस बात पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है कि क्या शिक्षा तंत्र इतना सामर्थ्यवान, सक्षम है कि आगे चर्चा कि उन उद्देश्यों को पूर्ण कर पाए? इस प्रश्न में ही समस्या के समाधान की प्राप्ति प्रतीत होती दिखाई देती है। हमारी सनातन संस्कृति के ऋषियों ने सार्थक एवं सर्वांगीण शिक्षाको बताते हुए शिक्षा एवं विद्या के समन्वय से ही व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया को सम्पन्न बताया है । उनकी दृष्टि से शिक्षा वह है जो व्यक्ति की आजीविका की आवश्यकता पूरी करती हो और विद्या वह है जो व्यक्ति में सुसंस्कारिता का समावेश करती हो । दोनों के मिलन से ही समग्र, समुन्नत व्यक्तित्व का निर्माण होता है । विद्या से अमृत प्राप्त होना तथा सरस्वती पूजन के द्वारा विद्या की अभ्यर्थना होने के पीछे यही तथ्य प्रमुख भूमिका निभाता है ।

वर्तमान शिक्षा प्रणालि एवं प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणालि में अंतर

शिक्षा एवं विद्या के अन्तर को समझने के लिए यह समझना अति आवश्यक है कि शिक्षा का स्तर जहाँ ऊचाँ होगा वहाँ निश्चित रुप से सभ्यता का विकास भी सर्वोच्च स्तर पर होगा, किन्तु यदि शिक्षा के साथ-साथ विद्या या दिक्षा भी जुडी हो तो संस्कार युक्त सुसंततियाँ समाज में बढती जाएँगी । जहाँ सभ्यता के विकास के लिए व्यावहारिक ज्ञान के संवर्धन तथा आत्मनिर्भर बनने के लिए शिक्षा आवश्यक है वहाँ स्वयं के जीवन के उद्देश्य को समझने, अनगढता को सुगुढता में बदलने और जीवन जीने की कला के शिक्षण के रुप में एक पूरक की निभाती है । जिसके पढाई पूरी कराना और आगे की शिक्षा भी कराना प्रत्येक समाज के लिए आवश्यक है किन्तु यह परिश्रम तब तक असफल रहेगा, जब तक शिक्षार्थियों में संवेदना का विकास, सत् प्रवृत्तियों के संवर्धन, समाज-परायण बनने की शिक्षा साथ में न दि जाए । जब शिक्षा एक साधन और व्यक्तित्व विकास एक साध्य बन जाता है तब शिक्षा को उतना महत्त्व न देकर विद्या संवर्धन के निमित्त किये गये आध्यात्मिक स्तर के प्रयास भूमिका निभाते प्रतीत होते हैं ।

वर्तमान, अवस्था में छात्रों में न तो अब वो पात्रता है और ना ही विनम्रता । शिक्षक भी गरिमा अनुरूप स्वयं की भूमिका निभा नहीं पा रहे, जो कि प्राचीनकाल के गुरुकुलों के आचार्य निभाते थे । अनेकों प्रकार की प्रतिकूल परिस्थतियों में, रहने के पश्चात् गुरुकुल से निकलने वाला छात्र चरित्रनिष्ठा, प्रतिभा एवं लोकसेवा प्रवृत्ति की दृष्टि से इतना खरा उतरता था कि सभी से उनहें सवर्था सम्मान प्राप्त होता था । यदि हमें वर्तमान शिक्षा तंत्र को दुरस्त करना है तो औपचारिक स्कूल-कॉलेज स्तर की शिक्षा के साथ-साथ जीवन जीने की कला की शिक्षा देनेवाली, विद्या का भी समावेश करना होगा । इसी रूप में नैतिकता छात्रों में एक सद्गुण के रुप में समाहित की जा सकेगी और तब न बेरोजगारी का कलंक हमारे सिर पर होगा, न ही उदण्डता से भरे छात्रों के उपद्रव और न ही खुले रुप में आम शिक्षकों की अवमानना । इस शिक्षा व्यवस्था को बाल संस्कार शालाओं से आरम्भ कर सद्ज्ञान संवर्द्धन हेतु लोकसेवी स्तर के सर्जनकारों के निर्माण एवं उत्कृष्ट चरित्र वाले श्रेष्ठ व्यक्तित्व वाले शिक्षकों के निर्माण की व्यवस्था भी बनाता है । इसे ही हम भविष्य के सतयुगी समाज का ब्ल्यू प्रिंट कह सकते हैं, यदि इसे सही ढंग से समझ लिया गया तो हम राष्ट्र की भविष्य की पीढी को एक जिम्मेदार, संस्कारवान नागरिक के रुप में विकसित करने में पूर्णतः सफल होंगे ।

वर्तमान शिक्षा प्रणालि से आम आदमी आत्म-मूर्छना से ग्रसित है चाहे कितना भी पढा-लिखा होने के पश्चात यदि यथार्थ रुप से सोचना, समाज का सुनियोजन करना, प्रतिकूलताओं से जीतना, समाज के अन्य घटकों के साथ रहना नहीं आता तो उसका पढा लिखा होना न केवल व्यर्थ है अपितु उस पर लगा धन भी राष्ट्रीय अपव्यय के समान है । इसी कारणवश इस प्रकार के तथा कथित शिक्षितों के लिए संजीवनी विद्या की आवश्यकता है जो उसे मूर्छना से जागृत करके समाज परायण बना सके । भारत में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अनेक समस्याओं से ग्रस्त है । छात्रों में अनुशासनहीनता, अध्यापकों में अपने उत्तरदायित्वों के प्रति गैर गम्भीरता आगे चलकर बेरोजगारी, और ऐसी ही अनेक समस्याएँ भारतीय शिक्षा जगत में हैं इनके कारणों की गहराई में झाँके तो प्रतीत होता है कि इन समस्याओं के मूल में प्रारम्भिक शिक्षा की अपेक्षा नींव की कमजोरी, अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति, ध्येयहीनता तथा विद्यार्थीयों में नित्य के प्रति अध्ययन कार्य की अवहेलना आदि कारण प्रतीत होंगे । परंतु मूल कारण ध्येयहीनता, विद्यार्थी के सामने उन्हें क्या पढकर क्या करना है? स्पष्ट नहीं हो पाता ।

विद्या क्या है**?**

हमारे मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि विद्या क्या है ? सामाजिक परिवर्तन के क्षणों में व्यापक खोज विद्या की है । विद्या जो मनुष्य को मनुष्यत्व दे सके, जीवन का उद्देश्य और उपयोग सिखा सके । जिसके बिना आज का आदमी इधर-उधर यथार्थ मार्गदर्शन के बिना मारा-मारा डोलता है और बेतुकी हरकतें करता है इन सभी का एकमात्र कारण यदि कोई हो तो वह शिक्षा का अभाव । प्रश्न स्वाभाविक है कहाँ गई वह विद्या? विद्यालयों में बढती बाढ, अध्यापको की भीड ने उसे कहाँ छुपा लिया? आज की परिस्थिति में इन प्रश्नों के उत्तर में इन्हीं सवालों की प्रतिध्वनि की गूँज सुनाई देती है । बस नहीं मिलता, वह समाधान जो भटकों को मार्ग दिखा सके । प्रख्यात विद्वान आर.एन. पाणि ने 'इन्टीग्रल एजूकेशन थॉट एण्ड प्रेक्टिस' में मानव प्रकृति को प्रशिक्षित रुपान्तरित करने के तीन सोपान बताए है वह है शिक्षा, कला, विद्या । प्रत्येक सोपान अन्योन्याश्रित होने के बावजूद विद्या अपने आप में अलग महत्त्व रखती है । पहले दोनों की सार्थकता का आधार विद्या ही है । कोई भी शिक्षा सही दिशा में आगे बढते कदमों से कला तक पहुँचती है । वर्तमान स्थिति में इसका उपयोग मात्र धन सम्पदा के अर्जन तक सीमित हो गया है । कला सम्मान अर्जित करने में लग गई है । तब भला इनका विकास विद्या के रुप में कैसे हो? इसी कारणवश सच्चे अर्थ में कला

भी दुर्लभ होती जा रही है । प्रत्येक क्षेत्र में कलाकार निष्णांत - लुप्त हो रहे हैं जिसके पीछे का कारण एक ही है उनकी रीति-नीति का भाव स्पर्शी होने के स्थान पर वैभव स्पर्शी होना ।

उपनिषदों में इन सभी का दो वर्गों में वर्गीकरण किया है । (1) अपरा विद्या (2) परा विद्या (परम विद्या) अपरा विद्या में शिक्षा व कला की सभी प्रकार की विद्याओं का समावेश है । जबकि पराविद्या में जीवन बोध के सूत्रों का । इन सूत्रों को योग्य रूप से स्वीकारने से जीवन का प्रत्येक कार्य आत्मा की उन्नति का साधन बनता है । और अपरा विद्या भी परा विद्या का स्वरुप प्राप्त करती है । शंकराचार्य की प्रश्नोत्तरी माला में एक प्रश्न आता है कः विद्या: जिसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं 'सा विद्या या विमुक्तये । अर्थात् विद्या वही है जो मुक्ति दिला सके । मुक्ति किससे? भ्रम-जंजालों से, इन्द्रियों की दासता से, स्वयं की दैन्यता से । हर एक वह चीज से जो जीवन बोध में अवरोध बनती है ।

सा विद्या या विमुक्त्येः-

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि विद्या किसे कहते हैं ? इस प्रश्नके उत्तर में शास्त्रकारों ने एक सूत्र में दिया कि `सा विद्या या विमुक्त्ये विद्या' वह है जो मुक्ति प्रदान करें । जिसके माध्यम से हम रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, दासता, गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, दुर्गुण, कुसंस्कार आदि से मुक्ति प्राप्त कर सके वह विद्या है । जिन्हें यह विद्या प्राप्त है वह विद्वान है । प्राचीन काल में वर्तमान की तरह स्कूल-कोलेज नहीं थे । छात्रों को गधे के बोझ की तरह पुस्तकें लादकर नहीं जाना पडता था । दिन-रात रटाने की पद्धति की आज की प्रणालि का कहीं दर्शन भी न था । तत् पश्चात् लोग विद्वान होते थे । उपयोगी शिक्षा और विद्या का इतना अधिक प्रचलन था कि हर गाँव और नगर स्वयं में एक महाविद्यालय था । जहाँ निवासी अपने घरवालों, कुटुम्बियों एवं नगर निवासियों से ही बहुमूल्य ज्ञान प्राप्त कर लेते थे । रहनेवाली विद्या की जगह जीवन की उपयोगी एवं आवश्यक शिक्षा क्रियात्मक रीति से प्राप्त की जाती थी । प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुभव के माध्यम से ही शिक्षार्थियों को तथ्य भली भांति हृदयंगम हो जाते थे। मेघनाथ, कुंभकर्ण, अंगद, हनुमान, जामवंत जैसे योद्धा । अर्जुन, भीम, द्रोण जैसे महारथी बी.ए. पास थे कि पीएच.डी. कुछ कह नहीं सकते । दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा, खगोल, भूगर्भ, प्राणिशास्त्र, रसायन, शिल्प, वास्तु अर्थ, नीति, धर्म, अध्यात्म आदि विषयों के जानकार विशेषज्ञ घर-घर में पाए जाते थे । इन विषयों से वह क्रियात्मक जीवन में अनुभव पूर्ण शिक्षा प्राप्त करते थे और विषय के सुयोग्य ज्ञाता बन जाते थे ।

पुरुष के समान स्त्रियाँ भी अपनी विद्वत्ता में शिक्षा में आगे थी । वह हर दृष्टि से सुशिक्षित थी । कबीर, रैदास, दादू जैसे संत शिक्षा की दृष्टि से पीछडे कहे जा सकते है । साहित्य और व्याकरण की उनकी कोई विद्वता नहीं थी किन्तु आज के व्याकरण, भाषा के विद्वान विशेषज्ञ की अपेक्षा उनकी विद्या वास्तविक थी और आज उन पर अभ्यासक्रम गठित होता है, संशोधन होता है । प्रश्न यह उठता है कि क्या पढें? बच्चों को क्या पढाएँ? इसका सीधा सा उत्तर शास्त्रकार यह देते है कि जिस ज्ञान के आधार पर दुःखदायी बन्धनों से छूट सके वही विद्या है, उसे ही पढा और पढाया जाए । रोग, शोक, द्वेष, पाप, दीनता, दासता गरीबी, बेकारी, अभाव, अज्ञान, दुर्गुण, कुसंस्कार, आदि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता जिस उपाय से मिले वही द्विधा है उसे ही सीखना एवं सिखाना उचीत है ।

वर्तमान शिक्षा उपरोकत कसौटी पर खरा उतरने में बिल्कुल निष्क्रिय निकम्मी सिद्ध होती है । जीव का एक तिहाई हिस्सा स्कूल-कॉलेजो के कैद में व्यतीत करने के बाद बच्चें जब बाहर आते है तो वे उपर निर्दिष्ट बन्धनों से छूटना तो दूर उल्टा जब स्कूल में प्रवेश किया था उसकी अपेक्षा अधिक जकडे हुए बाहर निकलते हैं । शील, स्वास्थ्य., संयम, विवेक, विनय, श्रद्धा, उत्साह, वीरत्व, सेवा, सहयोग, आदि विद्या

द्वारा प्राप्त होनेवाले, स्वाभाविक फल जब उन्हें दृष्टिगोचर नहीं होते तो उन्हें किस प्रकार कह सकते हैं कि उन्होंने विद्या प्राप्त की है या वह विद्वान हो गए हैं ।

सारांशः-

संक्षिप्त में इतना ही कहना उचित होगा कि अन्धानुकरण करके अपने बच्चों को निरर्थक एवं हानिकारक शिक्षा का भार लादकर उनके स्वास्थ्य और जीवन विकास का रोकना उचित नहीं हमें हमारी मूल प्राचीन सनातन भारतीय शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता अनिवार्य है ।

अंग्रेज मेकोले की शिक्षा प्रणाली को ध्वंस कर हमारी सनातन शिक्षा प्रणाली की ओर पुनः लौटना आवश्यक हो गया है कि जहाँ विश्वका सर्व प्रथम विश्व विद्यालय तक्षशिला की स्थापना हुई जिस भारत वर्ष को अभी तक अशिक्षित, गँवार राष्ट्र बताया जा रहा था इतिहास के पृष्ठ पलट जानकर अचंबित हो जाना स्वाभाविक है कि यह वह समय था जब अशिक्षित जैसा कोई शब्द ही नहीं था । आठ वर्ष की आयु में बालक का उपनयन संस्कार करके गुरु के पास या गुरुकुल भेजने की परंपरा थी । गुरु स्वयं के किसी क्षेत्र के दिग्गज रहते थे । स्त्रीयों की उच्च शिक्षा देने की पद्धति एवं परंपरा थी । इस प्रकार की सनातन शिक्षा प्रणालि ही हमें पुनः विश्व गुरु बनने में सहायता कर सकती है । मेकोली शिक्षा पद्धति कभी नहीं ।

संदर्भसूचि

1. शिक्षा एवं विद्या - पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङमय
   संपादक, ब्रह्मवर्चस
   प्रकाशक - अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा ।
2. आत्मोत्कर्ष का आधार-ज्ञान पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङमय
   संपादक, ब्रह्मवर्चस
   प्रकाशक - अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा ।
3. भारतीय संस्कृति के आधार भूत ज्ञान- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङमय
   संपादक, ब्रह्मवर्चस
   प्रकाशक - अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा ।
4. भारतीय संस्कृति के आधार भूत तत्त्व - पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङमय
   संपादक, ब्रह्मवर्चस
   प्रकाशक - अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा ।

डॉ. उमा शर्मा
नलिनी-अरविंद आर्ट्स कोलेज
वल्लभ विद्यानगर